

धूमिल के काव्य में सत्ता-संघर्ष

जय कुमार तिवारी

शोधार्थी, हिंदी विभाग

IGNTU, अमरकंटक

मो. 9691278517 ईमेल- tiwari501jay@email.com

सारांश- समकालीन कविता के प्रमुख हस्ताक्षर धूमिल के काव्य तत्कालीन भारत के राजनीतिक यथार्थ को अभिव्यक्त करते हैं। स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक प्रतिस्पर्धा ने भारतीय राजनीति में सत्ता संघर्ष को जन्म दिया। सत्ता का यह संघर्ष सभी राजनीतिक दलों पर हावी हो गया। गठबंधन तथा आपसी भाईचारे की राजनीति ने विपक्षी दलों को भी कमजोर किया। कुर्सी के मोह ने नेताओं की कर्तव्यनिष्ठा तथा ईमानदारी को भी खत्म कर दिया। इसने आम आदमी के जीवन को भी प्रभावित किया। भारतीय जनमानस का राजनीति से मोहभंग होने लगा। इस परिस्थिति ने असंतोष को जन्म दिया। धूमिल जनवादी कवि हैं। उन्होंने समाज के इस यथार्थ को अपनी कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। धूमिल के काव्य में तत्कालीन राजनीतिक यथार्थ, सत्ता संघर्ष, असंतोष तथा क्रांति चेतना को स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है।

बीज शब्द- सत्ता संघर्ष, लोकतंत्र, राजनीतिक प्रतिस्पर्धा, मोहभंग, गठबंधन, यथार्थ, युगबोध, संसद, संविधान।

मूल आलेख- धूमिल समकालीन हिंदी कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं। धूमिल ने समकालीन सामाजिक-राजनीतिक परिवेश को अपने कविता को वर्ण्य-विषय बनाया है। हिंदी कविता में समकालीन कविता की शुरुआत 1970 के आस-पास से माना जाता है। आजादी के बाद एक स्वतंत्र सत्ता की स्थापना ने जनता को बड़ी उम्मीदें दी। भारतीय संविधान ने लोकतंत्र को शासन के मूल तत्व के रूप में स्वीकार किया। राजनीतिक दलों के उदय ने राजनीतिक प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया। राजनीतिक दल अपने कर्तव्यों से विमुख हो कर पार्टी हितों को प्राथमिकता देने लगे। इस वजह से 1947 के बाद भारतीय राजनीति का सफर काफी उतार-चढ़ाव भरा था। सत्ता की राजनीति तथा मोहभंग से उपजे असंतोष एवं निराशा ने भारतीय जनमानस को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। लोक में राजनीतिक मोहभंग की भावना पनपने लगी, स्वतंत्र्योत्तर स्वप्न टूटते चले गए, समाजवादी चेतना ने आक्रोश को जन्म दिया, शोषितों, किसान तथा मजदूरों में क्रांतिकारी तेवर दिखने लगे, व्यवस्था की विद्रूपताओं पर व्यंग्य किया जाने लगा तथा कविता भी भाषाहीन तथा आम आदमी के नजदीक हो चली थी। इसने समकालीन कविता के स्वरूप को निर्धारण करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। “इस काव्यधारा के कवियों का मूल प्रतिपाद्य राजनीति और व्यवस्था की विद्रूपताओं के फलस्वरूप जन सामान्य में व्याप्त मूल्यहीन स्थितियों को उद्घाटित कर जन-मुक्ति के मूल्य के प्रतिष्ठापक है। सही और सार्थक पहचान इनका संबल है” (राजपाल, पृ.42)

धूमिल के काव्य समकालीन हिंदी कविता का प्रतिनिधित्व करते हैं। धूमिल की कविताओं का कथ्य तथा शिल्प समकालीन कविता के लिए प्रतिमान हैं। धूमिल की भाषा जन भाषा के नजदीक है, “भाषा का अर्थ है जीने की पद्धति और जीने का ढंग। भाषा यानी जनतंत्र की भाषा, जनतांत्रिक अधिकारों की भाषा, आजादी और सुखी जिंदगी के हक की भाषा” (सिंह, 2012, पृ. 100) यही भाषा हमें धूमिल की कविताओं में दिखाई देता है। यह धूमिल को जनकवि के रूप में स्थापित करता है।

युगीन यथार्थ को अभिव्यक्त करते हुए धूमिल की कविताओं में सत्ता-संघर्ष भी अभिव्यक्त होता है। राजनीति में सत्ता-संघर्ष राजनीतिक नेताओं के बीच नेतृत्व, अधिकार और प्रभाव को लेकर होने वाले संघर्ष के रूप में सामने आता है। यह आमतौर पर जबरदस्ती, पैरवी, गठबंधन निर्माण

जैसी राजनीतिक व्यवहारों से व्यक्त होती है। इसके परिणाम स्वरूप आमजन काफी प्रभावित होता है। इस संघर्ष का ही परिणाम होता है कि राजनीतिक मूल्य गिरते चले जाते हैं, कुव्यवस्था व्याप्त होने लगती है, शासन जनता के बजाए पार्टी हितों को महत्व देने लगता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में विपक्ष का मजबूत होना सकारात्मक माना जाता है, जबकि सत्ता के संघर्ष ने पार्टियों के बीच गठबंधन को बढ़ावा दिया है, राजनीति अब सत्ता तथा कुर्सी तक सिमट गई है।

धूमिल की कविता, कविता न होकर आम जन के समक्ष प्रस्तुत एक संवाद की तरह प्रतीत होता है। काशीनाथ सिंह के शब्दों में “वह बहस करता, अपने को साफ करता, इस बीच मिलने वाले सुझावों और प्रतिक्रियाओं को अपने दिमाग में बिठाता जाता और यह सिलसिला तब तक जारी रखता जब तक कविता पूरी नहीं हो जाती। शब्दों के प्रयोग, सटीक मुहावरे, सही और अनिवार्य तुक, सार्थक वाक्य-विन्यास पर इतनी मेहनत करने वाला दूसरा आदमी नहीं देखा” (सिंह, 1996, पृ.22)। धूमिल लय या तुकबंदी पर ध्यान नहीं देते थे, वह सत्ता के संघर्ष को सामान्य शब्दों में बस कह देते थे, वह कविता हो जाती है। इसीलिए धूमिल की कविताओं में समकालीन यथार्थ स्पष्ट है।

“व्यवस्था के प्रति आक्रोश और विरोध, विसंगतियों पर पैना व्यंग्य, व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के बदलते हुए आयाम भी उनकी कविता में अभिव्यंजित हुए हैं। सच्चे अर्थों में वे युग बोध के कवि हैं। उन्होंने जो कुछ भी देखा, जैसा देखा उसे वैसा ही चित्रित किया है। उनके काल में समकालीन यथार्थ अभिव्यक्त हुआ है। यही कारण है कि उनकी अधिकांश कविताओं में व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन के कथ्य के साथ-साथ राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के संदर्भ भी समाहित हैं” (जोशी, पृ.54)। धूमिल के काव्य में राजनीति की कुटिलता तथा संघर्ष की भी अभिव्यक्ति है। राजनीति में बढ़ती प्रतिस्पर्धा ने नेताओं का इमान छीन लिया। उनकी कुटिलता स्पष्ट नजर आने लगी। राजनीति ने अपनी जगह बनाए रखने के लिए तथा सत्ता मोह उन्हें आमजन की आवाज से दूर ले गया। अब राजनीति जनता के लिए नहीं बल्कि ‘कुर्सी की राजनीति’ होने लगी थी। वह सत्ता में अपनी जगह बनाने के लिए आम-आदमी की जरूरतों के साथ खेलने लगे थे। धूमिल स्वयं लिखते हैं-

“एक आदमी रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूँ-
यह तीसरा आदमी कौन है

मेरे देश की संसद मौन है” (कल सुनना मुझे, पृ.66)

सत्ता के इस संघर्ष में आदमी ही आदमी का दुश्मन बनता चला गया। राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के चलते नेता आम आदमी की जरूरतों से खेलने लगे। सामान्य जन के बीच भेद-भाव, सांप्रदायिकता, जातीय मतभेद आदि को चुनाव के नारे-बाजी का विषय बनाया जाने लगा।

न कोई प्रजा है
न कोई तंत्र है
यह आदमी के खिलाफ

आदमी का खुलासा

षड्यंत्र है।” (सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र, पृ. 21)

सत्ता बनाए रखने के लिए कानूनों से छेड़-छाड़ आम हो गया। धूमिल की कविताओं ने सत्ता के यथार्थ को व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है। “धूमिल की कविताओं में परिवेशगत यथार्थ के चित्रण के साथ ही साथ व्यवस्था और राजनीतिक तंत्र के विरुद्ध इनका विद्रोह उभड़कर सामने आया है। समकालीन कविता के अंतर्गत इनकी पहचान विद्रोही कविता और वैचारिक संरचना, आम आदमी की जिन्दगी के मुहावरे, व्यंग्य-विडंबना और सपाटबयानी के कारण है” (सिंह, 2006.पृ.235)।

धूमिल सत्ता के मनसूबों पर भी सवाल करते हैं। यह प्रश्न धूमिल का सत्ता से नहीं, बल्कि जनता का संसद से है। वह मोहभंग के बाद आम आदमी के मन में उपजा विचार मात्र है। जनप्रतिनिधि जनता को ही भूल गए हैं, लोग याद हैं मतदाता के रूप में। आजादी का अर्थ ही भूल गए हैं। आजादी को भावनात्मक बनाकर खेल रहे नेताओं से यह प्रश्न उल्लेखनीय है-

**“सुनसान गलियों से चोरों की तरह गुजरता हुए
अपने आप से सवाल करता हूँ
क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढौता है**

या इसका कोई खास मतलब होता है” (कल सुनना मुझे, पृ 12)

सत्ता पक्ष जनता की भावनाओं से वाकिफ है, वह उन्हें वास्तविक मुद्दों से भटकाने के लिए नित-नए मुद्दे प्रस्तुत करता है। जनता को टुच्ची सुविधाएं उपलब्ध करा कर उनकी भावनाओं के साथ खेल रहा है-

**तुम चुप रहोगे और लज्जा के
उस निरर्थक गूंगेपन से सहोगे।
यह जानकर कि तुम्हारी मातृभाषा
उस महरी की तरह है, जो
महाजन के साथ रात भर
सोने के लिए/एक साड़ी पर राजी है**

सिर कटे मुर्गों की तरह फड़कते जनतंत्र में सुबह

सिर्फ, चमकते हुए रंगों की चालबाजी है।” (कल सुनना मुझे, पृ.15)

एक ही कुर्सी के लिए अलग-अलग पार्टियों की राजनीतिक खेल खेल रहे हैं। जनता उनके ही अनुसार इधर-उधर हो रही है। जनता की अपनी कोई विचार धारा नहीं है, अपने कोई मतभेद नहीं हैं, वह नहीं जानता कि कौन सा नेता उनके किस हित के लिए काम करेगा अथवा नहीं, लेकिन वह रैलियों में पूरे जोश के साथ समर्थन कर रहा है। वह आज इस पार्टी के लिए तो कले किसी दूसरे, तीसरे के लिए। जनता इस बात को नहीं समझ पा रही है कि यदि सब का लक्ष्य एक ही कुर्सी है, एक ही जन के लिए प्रतिनिधित्व है तो अलग-अलग दलों की नारेबाजी तथा वादों में इतना अंतर क्यों है-

**हां यह सही है, कुर्सियों वहीं है
सिर्फ, टोपियां बदल गयी हैं और-
सच्चे मतभेद के अभाव में
लोग उछल-उछल कर
अपनी जगहें बदल रहे हैं
चढ़ी हुई नदी में**

**हर तरफ विरोध विचारों का दलदल है
सतहों पर हलचल है/नये-नये नारे हैं**

भाषण में जोश है” (पटकथा, संसद से सड़क तक, पृ.106)

मंत्री चरित्रहीन हो गए हैं या यूँ कहें कि चरित्रहीन, अपराधी तथा अयोग्य लोगों का ही संसद पर बोलबाला हो गया है। अब तो राजनीति भी नीचले स्तर की होने लगी है। जो कभी किसी बड़े राजनीतिक विचारधाराओं को लेकर आगे बढ़ रहे थे, वह टुच्चेपन पर उतर आए हैं-

“लाल हरी झण्डियां-

**जो कल तक शिखरों पर फहरा रहीं थी
वक्त की निचली सतहों में उतरकर
स्याह हो गई हैं और चरित्रहीनता
मंत्रियों की कुर्सी में तब्दील हो चुकी है”**

(शहर में सूर्यास्त, संसद से सड़क तक, पृ.43)

चुनाव आते ही माहौल बदलने लगता है। भाषणों तथा रैलियों में जनता का महत्व बढ़ जाता है। वह उनके लिए संसद की सीढियां हैं, वह सर्वोपरि हैं। सभी वादे, आश्वासन जो पिछले चुनावों में प्रयुक्त हुए थे कुछ और संश्लिष्ट हो कर फिर से दोहराये जाने लगे हैं। यह राजनीति आम आदमी की समझ से बाहर है -

**सुविधा परस्त लोगों के/ऊसर दिमाग में
थूहर की तरह उगी हुई राजनीति
शब्दों के बाहर का व्याकरण है”**

(संसद से सड़क तक, पृ.47)

शासन तंत्र सत्ता प्रतिपक्ष के हित में कार्य करते हैं। विपक्ष के साथ प्रतिस्पर्धा में वित्त मंत्री भी सत्ताधारी दल के हितों का ही समर्थन कर रहे होते हैं। विपक्ष को उतना मौका ही नहीं दिया जाता कि वह अपने कार्यों से जनता को प्रभावित कर सके, हालांकि विपक्ष का भी अंतिम लक्ष्य जनता को प्रभावित कर मत अर्जन ही होता है। समकालीन समय में शासकों की यह मनमानी एवं भेदभाव को जनता नहीं समझ पाती है, लेकिन धूमिल समझते हैं-

**“वित्त मंत्री की ऐनक का
कौन सा शीशा कितना मोटा है
और विपक्ष की बेंच पर बैठे हुए
नेता के भाईयों के नाम
सस्ते गल्ले की कितनी दुकानों का
कोटा है”।** (संसद से सड़क तक, पृ.84)

संसद और संविधान के नाम पर आम आदमी को शोषण होता है। सत्ता धारियों की सुख सुविधाओं की कीमत आदमी के जीवन से चुकता किया जाता है। जनरक्षक ही भक्षक बना हुआ है। चुनाव के बीत जाने के बाद शासन जनता को भूल जाती है-

**इफले पर बजती है भूख, पैर में घंटियां
दुपहर की आंच में सिकती हैं
रोटियां/मंजा करो/तुम अपनी संसद के साथ
हम अपनी सांसत के साथ”**

(रोटियों का शहर, संसद से सड़क तक, पृ.39)

धूमिल अपनी कविता ‘स’ और ‘त’ के खेल के माध्यम से सत्ता संघर्ष में उपयोग किए जाने वाले कुछ और कारगर हथियारों का जिक्र करते हैं। सत्ता या तो हत्या करके, डरा-धमका कर हासिल की जाती है, या पैसे लुटा कर। कोई भी दल काम को महत्व नहीं देता है, विकल्प के अभाव में इनमें से कोई एक ही सत्ता में भी आ जाते हैं। यह सदियों से होता आ रहा है। अंग्रजों के शासन का आधार भी यही दो थे, तथा मुसलमानी आक्रमण भी इन में से ही एक थे। यह प्रवृत्ति आज भी है, धूमिल भी अभिव्यक्त करते हैं-

**“सत्ता का जन्म बन्दक की नली से /होता है
सत्ता का जन्म सन्दक की तली से होता है
और देखो वे किसे चुनते हैं?”**

(सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र, पृ. 63)

यही कारण है कि संसद का दरवाजा कानूनी तौर पर आम आदमी के लिए खुले होने के बावजूद भी कभी वहां तक नहीं पहुंच पाता है। अक्सर अपराधी या प्रभावशाली वर्गों का ही बोल-बाला हो गया है। जनता शासन के इस जाल को धीरे-धीरे समझती है, धूमिल तो बहुत

पहले ही समझ गए थे। वह शासन के लिए सिर्फ मतदान की गिनती के लिए नहीं हैं, वह रैलियों की भीड़ नहीं हैं, जनता के पास भी आवाज है, संसद दमन करने की शक्ति है, क्रांति की शक्ति है। धूमिल भी इस क्रांति चेतना के पक्षधर हैं-

“तुम जानते हो शब्द शस्त्र बन गए हैं

और अगवा बंदक की निशान देही पर

कविता ने ढूँढ लिया है अपनी मुक्ति का रास्ता

दुश्मन की छाती के खून भरे छेद से” (कल सुनना मुझे, पृ.58)

जनता भावनात्मक बंधनों को भी समझ चुकी है। गांधी और आजादी के नाम पर हो रही राजनीति से अब जनता का मोहभंग हो रहा है। सत्ता की इस राजनीति से रोटी, कपड़ा और मकान की पूर्ति नहीं हो पा रही है, यह त्याज्य है। जो जनता रैलियों, जुलूसों में भीड़ बेनती आई है वह भी अपना मूल्य समझ रही है, अब वह रोटी के लिए सोंचेगा। यह चेतना शासन तंत्र से मोहभंग का है। उसे अब शासन के कोई आशा या उम्मीद नहीं है, यह आम जन का असंतोष है-

“उस महावरे को समझ गया हूँ

जो आजादी और गांधी के नाम पर चले रहा है

जिससे न भंख मिट रही है, न मौसम बदल रहा है,

लोग बिलबिला रहे हैं, पेड़ों को नंगा करते हुए

पत्ते और छाल खा रहे हैं

मर रहे हैं

दान कर रहे हैं

जलसों-जुलूसों में भीड़ की पूरी ईमानदारी से

हिस्सा ले रहे हैं और

और अकाल को सोहर की तरह गा रहे हैं”।

(धूमिल, कल सुनना मुझे, पृ.18-19)

इस तरह धूमिल का काव्य समकालीन राजनीतिक परिदृश्य का खुला चित्रण करता है। वह सत्ता के संघर्ष, नीति तथा आम जनता से विमुखता को भी अभिव्यक्त करता है। समकालीन राजनीति में राजनीतिक दलों का आपसी संघर्ष भी आम जन जीवन को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया। शासन तंत्र के प्रति जनता का अविश्वास बढ़ता गया, राजनीतिक वादों से मोहभंग की स्थिति ने हर स्तर पर प्रभावित किया। धूमिल जनकवि हैं, वह समकालीन यथार्थ को स-स्वर प्रस्तुत करने में सफल रहे हैं।

संदर्भ:-

1. धूमिल, कल सुनना मुझे, दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2010
2. धूमिल, संसद से सड़क तक, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1972
3. धूमिल, सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र, दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 1983
4. सिंह, काशीनाथ, काशी का अस्सी, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2011
5. नवल, नंद किशोर, समकालीन काव्य यात्रा, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2004
6. सिंह, काशीनाथ, अपना मोर्चा, नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2012
7. सिंह, काशीनाथ, आलोचना भी रचना है, नई दिल्ली: किताबघर प्रकाशन, 1996
8. राजपाल, हुकुमचंद, समकालीन बोध और धूमिल का काव्य, नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2015
9. जोशी, मीनाक्षी, धूमकेतु धूमिल और साठोत्तरी कविता, नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, 2021

अकाल में उत्सव- समकालीन भारतीय ग्रामीण समाज का प्रतिरूप

प्रो.प्रिया

सरकारी आर्ट्स कॉलेज, केरल

(संप्रति: विसिटिंग प्रोफेसर कसान फेडरल विश्वविद्यालय) कसान, रूस

फोन: 9447279181 मेल:priyabhaskarannair@gmail.com

सार-भारतीय किसान होरी से कभी आगे नहीं बढ़ा है या बढ़ पा रहा है। वास्तव में यह बहुत ही भीषण स्थिति है। देश प्रगति की ओर तेजी से अग्रसर हो रही है। हर क्षेत्र में वह अपनी उन्नति को दिखाकर सबको गौरव कर रही है। पर माँ भारती के ये किसान अब भी अपनी दरिद्रता व अधिकारी वर्ग के गलत कारनामों के चंगुल में फंसा हुआ है। यही चिंतन मनन का विषय है। यह कब तक यह होता जाएगा क्योंकि गोदान पढ़ते समय किस प्रकार की मनासिकता थी उसी मनासिकता से ही इस को और फांस जैसे अन्य उपन्यासों को हम पढ़ते हैं। इसका मतलब है कहीं हम गलत रास्ते से जा रहे हैं। इसमें किसी न किसी प्रकार हल ढूँढना जरूरी है। गोदान का समय तो अंग्रेज राज था। पर उससे भी गयी बीती करतूत हमारे तथाकथित अधिकारी वर्ग आज भी कर रहे हैं। इसको इस जनतंत्र देश में हल निकालना बहुत जरूरी नहीं अवश्यंभावी भी है। पंकज सुबीर जी ने रामप्रसाद और उनकी पत्नी एवं तीन बच्चों वाले परिवार का चित्र एक फिल्मी ढंग से खींचा है। जो हरेक के मन को छूता ही नहीं सबके मन में एक प्रश्न चिह्न डालता है कि आखिर कसूर किसका है। सत्ता का या सत्ता को गलत ढंग से आगे ले जानेवाले एक बहुसंख्यक मनुष्यों की गलत मानसिकता का।

बीज शब्द - तोड़ी - पैरों में पहननेवाली एक आभूषण। देवधामी - उन सभी धार्मिक स्थलों की यात्रा तथा वहाँ जाकर नये दूल्हा- दुल्हन को धोक (साष्टांग) दिलवाने की प्रथा।

प्रस्तावना- इस उपन्यास में एक भी पंक्ति बढ़ा चढ़ाकर नहीं लिखा गया है। क्योंकि जिस प्रकार हमारे मन को उस गांव की तरफ से उस किसान के पास से उस परिवार से यह उपन्यास हटाता नहीं है और पूरा होने के बाद भी वह किसान एवं पूरा चित्र हमारे मन मस्तिष्क में जम कर रह जाता है जिस प्रकार होरी और धनिया हमारे मन में है ठीक उसी प्रकार रामप्रसाद एवं परिवार भी है। उस समय के बारे में हम सोच सकते थे कि वह तो अंग्रेज राज का ही परिणाम है। पर आज हम क्या दिलासा दे सकता है इस किसान के परिवार को। साहित्य के माध्यम से समाज में परिवर्तन लाया जा सकता है। इस उपन्यास के बारे में शीर्षस्थ आलोचक मैनेजर पाण्डेयजी ने 2016 में जनसत्ता समाचार पत्र में साहित्य इस बरस चर्चा के अंतर्गत बताया था कि ‘-यह गाँव और किसान जीवन के दुःख-दर्द कहनेवाली रचना है। इस उपन्यास को पढ़कर कहा जा सकता है कि किसान जीवन में आजकल सुख कम और दुःख ज्यादा है। इस उपन्यास में एक किसान की आत्महत्या भी है। शासन प्रशासन द्वारा उस किसान को पागल घोषित कर अपनी जिम्मेदारी से बचने की कोशिश की जाती है’। हमेशा किसान को मान एवं अपने सत्कर्म करते ही दिखाया जाता है। अर्थात् किसान कभी किसी प्रकार के झूठ को स्वीकृत नहीं करते। वे मान को हमेशा के लिए पहला स्थान देते हैं। फिर भी अधिकारी वर्ग उनकी वेदना को नजरअंदाज करने में माहिर है। उन्हें जाने अनजाने किसी प्रकार की सहायता न देते हुए आगे बढ़ने में ही उन लोगों को तृप्ति मिलता है। उनको यह सोचना चाहिए कि इन किसान के रहते ही वे अपना काम कर सकता है और तनख्वाह भी प्राप्त कर रहे हैं। पर कौन सोचता है। दूसरों के बारे में सोचना उनके चप्पल में जाकर खड़े होकर के सोचना एवं दर्या आदि सकारात्मक भावनाओं से उनसे बर्ताव करना आदि एक सच्चा मनुष्य का गुण होनी चाहिए। पर आजकल हर कहीं मस्का लगाना झूठ को अपना आभूषण मानना एवं अपने से थोड़ा निचले लोगों को परेशान करना उनकी खिल्ली उठाना आदि आजकल के मानवीय बर्ताव में चार चांद लगाने वाली चीजें बन गई हैं। सिर्फ दिखावा संस्कृति का पनपना एवं राजनीतिक लोग व अधिकारी वर्ग के गैरजिम्मेदारी मनोभाव आदि सामाजिक जीवन को खासकर तथाकथित निम्न तबके के लोगों का जीना दुभर कर दिया है। इसका सीधा साक्ष्य ही यह उपन्यास देता है।